ISSN: 2349-4654

नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक वर्ष : 9, अंक : 1, अक्टूबर 2021

गुरुतत्त्व की सार्थकता-संगीत एवं आध्यात्मिक संदर्भ में

डॉ. प्रेरणा अरोड़ा

एसोसिएट प्रोफेसर, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, सर गंगा राम हॉस्पिटल मार्ग, नई दिल्ली

Paper recieved on : August 30, Return on September 11, Accepted on October 13, 2021

सार-संक्षेप

परा-विद्या तथा अपरा-विद्या दोनों की प्राप्ति में तत्त्वदर्शी गुरु का मार्गदर्शन चंद्रशाखा न्याय के माध्यम से शिष्य को बोध के स्तर पर ले जाने में अत्यावश्यक है। अमूर्त स्वर को मूर्तिमान करने में तथा देव मूर्ति उपासना से प्रारंभ कर पारब्रम्ह के निराकार स्वरूप में स्वयं को लीन कर देने में गुरु ही एकमात्र माध्यम हैं। स्वयं को स्वरमय कर नादयोग में समाहित होना हो अथवा ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग द्वारा क्षुद्र 'मैं को अनंत 'अहम् ब्रह्मास्मि' में विलीन करना हो, इन दोनों लक्ष्य की प्राप्ति गुरुकृपा से ही संभव है। इन पवित्र गन्तव्यों तक पहुँच बनाने में गुरु तथा शिष्य दोनों की सुपात्रता अभीष्ट हैं। उपनिषदों एवं गीतोक्त शिष्यत्व तथा 'गुरुत्व' के वांछित गुणों की चर्चा प्रस्तुत शोध प्रबंध में की गई है। संगीत को ईश्वरप्राप्ति की सुगम सीढ़ी कहा जाता है अतः इस लेख में संगीत एवं अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करने में साम्यता का दिग्दर्शन कराया गया है। शोध प्रविधि में उपनिषदों का अध्ययन कर उनमें वर्णित गुरु तत्त्व व ज्ञानार्जन के मार्ग एवं संगीत के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता का वर्णन है। अंततः निष्कर्ष रूप में उभय मार्गों में किंचित एकरूपता परिलक्षित की गई है।

मुख्य शब्द : संगीत, गुरु, अध्यात्म, विद्या, शिक्षक, शिष्य

शोध-पत्र

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

वेद कृत स्कंद पुराण के अंतर्गत् 'गुरुगीता' में शिव एवं उमा संवाद में उपरोक्त शब्द कहे गए। गुरु ब्रम्हा है, गुरु विष्णु है, गुरु ही महेश्वर देव हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं–श्री गुरु को हमारा नमस्कार। आध्यात्मिक रूप से उपरोक्त श्लोक का अर्थ गुरु को ही ईश्वरत्व की उपाधि प्रदान करता है। दार्शनिक रूप से देखा जाए तो ज्ञान का प्रस्फुटन करने में गुरु की भूमिका ब्रह्म के समान विद्या विशेष में जन्म कराने से है। ज्ञान को बनाये रखने एवं उत्तारोत्तर वृद्धि में मार्गदर्शक गुरु विष्णु समान एवं अज्ञानता का नाश करने में हेतु होने के कारण महेश्वर के समान हैं। संगीत के क्षेत्र में गुरु के द्वारा शिष्य का पदार्पण व संगीत विषय से परिचय कराना संगीत में जन्म देने जैसा है [ब्रह्मा]। संगीत मार्ग पर अविरल शिष्य का मार्गदर्शन कर अग्रसर करना विष्णु सदृश पालन करना है और शिष्य के सांगीतिक दोषों का निवारण महेश सदृश है।

लौकिक अथवा पारलौकिक ज्ञान तत्त्व की प्राप्ति करने के लिए प्रत्येक मनुष्य के जीवन में गुरु की अत्यधिक आवश्यकता होती है तभी तो भगवान् कृष्ण गुरु संदीपन के द्वारा और भगवान राम गुरु वशिष्ठ द्वारा दीक्षित हुए। हम सभी मानवों को गुरु का सान्निध्य ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता है। गुरु द्वारा ही अपने-अपने इच्छित क्षेत्र में उचित मार्गों का बोध कराया जाता है और कुछ समयांतराल पश्चात् साधक के अंतस में यह सामर्थ्य जागृत कर दी जाती है कि साधनारत ज्ञान-पिपासु स्वयं अपनी त्रुटियों को देख कर उन्हें दूर करने की क्षमता विकसित कर पाए। गुरु शिष्य को उसी की भीतरी शक्तियों से परिचित कराते है। भौतिक गुरु सूक्ष्म रूप से साधक के भीतर विवेक रूप में परणित हो जाता है। इस प्रकार वह सहज ही लक्ष्य की ओर अग्रसर करा देता है।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय॥

[बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय-1, ब्राह्मण-3, मंत्र-28] [1, 2]

'हमें असत से सत की ओर, अँधेरे से उजाले की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।' गुरु के द्वारा ही यह असंभव कार्य संभव किया जाता है।

बाहरी मैल तो जल से साफ़ हो जाती है परन्तु मन के संशय केवल गुरु द्वारा ही दूर किये जा सकते हैं। जब तक हम पुस्तक से ज्ञान प्राप्त करने में प्रयास रत रहते हैं तो हम भौतिक पदार्थ-ज्ञान के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाते हैं परन्तु जब हम गुरु के मुखारविंद से उनका अनुभव ज्ञान प्राप्त करते हैं तो उस समय एक गुरु की चेतना एक शिष्य की चेतना को संबोधित कर रही होती है। जिस प्रकार मूर्तिकार इक शिला में से अवांछनीय पत्थर के अंश को हथोड़े व छेने से हटा देता है उसी प्रकार एक गुरु शिष्य के भीतर के अज्ञान को कठिन परिश्रम द्वारा दूर करने

में अनिवार्य माध्यम सिद्ध होते हैं। संसार की प्रत्येक विद्या की प्राप्ति में गुरु तथा शिक्षक की महती भूमिका है। सभी जानकारियों, शिक्षाओं आदि को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तो 'यह' (इस) संसार विषयक तथा दूसरी 'वह' (उस) अध्यात्म विषयक। संसार विषयक जानकारियों का नाम 'शिक्षा' है। अध्यात्म विषयक स्वरूप अनुभव को 'ज्ञान' कहते हैं। यद्यपि प्रायः संसार सम्बन्धी जानकारियों को सांसारिक ज्ञान भी कह दिया जाता है तथापि स्वरूप अनुभव आध्यात्मिक ज्ञान को 'शिक्षा' कहना उचित नहीं है। संसार विषयक जानकारियाँ (शिक्षा) स्थूल हैं तो स्वरूप विषयक ज्ञान सूक्ष्म। संसार सम्बन्धी विषय जैसे जीव विज्ञान, प्राणी शास्त्र, इतिहास, भूगोल, भौतिकी, रसायन शास्त्र, आनुवंशिकी, व्यापार प्रशासन, पाक शास्त्र, गृह विज्ञान, राजनीति इत्यादि का शिक्षण शिक्षक कराते हैं जो प्रायः वेतन भोगी होते हैं परन्तु सांगीतिक ज्ञान तथा अध्यात्म ज्ञान केवल गुरु ही करा सकते हैं। ऐसे गुरु का तत्ववेत्ता अर्थात् सिद्ध होना आवश्यक है। अतः गुरु के लिए प्रायः 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग भी होता है। सद्गुरु तो अकारण दयालुता वश अपने शिष्य का उसकी सुपात्रता अनुसार कल्याण का पूरा दायित्व स्वयं ले लेते हैं। शिक्षक के पास प्रायः उपाधि या उपाधियों के प्रमाण पत्र होते हैं परन्तु सद्गुरु उपाधियों तो क्या आधियों-व्याधियों से भी दूर होते हैं। कबीर, नामदेव, मुहम्मद, नानक, बुल्ला, हरिदास, लाओत्से, बुद्ध, महावीर, जीसस आदि किसी के पास भी प्रमाण पत्र (उपाधियाँ) नहीं थे और न ही संगीत के क्षेत्र में उ. अमीर खां, उ. अल्लाउद्दीन खां, उ. बड़े गुलाम अली खां, उ. फैयाज खां व पंडित रविशंकर के पास ही संगीत की कोई डॉक्टरेट डिग्री। अतएव गुरु के गुरुत्व में डिग्री का कोई स्थान नहीं। शिक्षक अर्थार्थी होते हैं परन्तु सदुगुरु परमार्थी। शिक्षकों द्वारा दी जाने वाली आधुनिक शिक्षा के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है–

"The problem with modern education is that it passes from the books to the notes of the teacher thence to the examination answer-books through the notes of the students, without at any stage going to the head." [3]

'शिक्षक में ऐसा सम्भव हो सकता है, परन्तु सद्गुरु तो सद्गुरु ही तब कहलाते हैं जब वह स्वयं 'सच्चिदानन्द' स्वरूप हो चुके होते हैं। संगीतज्ञ भी गुरु तभी कहलाते हैं जब वे स्वर साम्राज्य का स्वामित्व प्राप्त कर चुके हों। शिक्षक के पास शिक्षार्थी (विद्यार्थी) तथा सद्गुरु के पास शिष्य जाते हैं। शिष्य भी वही हो सकता है जो भगवान कृष्ण के गीतोक्त कथनानुसार वैसे शिष्यत्व ग्रहण करे जैसे अर्जुन को आदेश मिला–''भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम (तथा) सेवा (और) निष्कपट भाव से किये गये प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को (गुरु कृपा तथा अपने श्रवण-मनन निदिध्यासन द्वारा) जान।''

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ [4]

(गीता 4/34)

शिक्षक द्वारा दी गई उपरोक्त शिक्षायें संसार में जीवनोपयोगी होती हैं परन्तु सद्गुरु प्रदत्त ज्ञान, लोक-व्यवहारोपयोगी होने के साथ-साथ, स्वयं को जानने का माध्यम होता है।

विषय की सूक्ष्मता :

विषय जितना स्थूल होता है, उसका समझना-समझाना उतना ही आसान होता है क्योंकि स्थूलता विषय को इन्द्रियों के अनुभव क्षेत्र में ला देती है। सभी विषय इसी प्रकार सीमित होते हैं। यह सीमा देश, काल तथा वस्तु बद्ध होती है। देश बद्ध का अर्थ है–यहाँ है तो वहाँ नहीं। काल बद्ध अर्थात् अब है तब नहीं। वस्तु बद्ध अर्थात् अमुक है तो अन्य नहीं।

इन्द्रियों द्वारा सभी सांसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं तथा परिस्थितियों का ज्ञान अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि में संग्रहीत किया जा सकता है परन्तु इस 'बुद्धि' का ज्ञान किसको है? यह तो 'स्वयं' को है। अन्य व्यक्ति भलें ही बुद्धि परिमाणकांक (क्द) नाप कर तुलनात्मक दृष्टि से कह दें कि अमुक व्यक्ति की बुद्धि अधिक तीक्षण है परन्तु बुद्धि का अनुभवगत ज्ञान केवल व्यक्ति के 'स्वयं' को है– ज्ञानेन्द्रियों (मन सहित) का ज्ञान बुद्धि को है परन्तु किसी ज्ञानेन्द्रिय को बुद्धि का ज्ञान नहीं, क्योंकि इन्द्रियों की अपेक्षा बुद्धि सूक्ष्म है। बुद्धि का ज्ञान 'स्वयं' को है परन्तु 'स्वयं' बुद्धि की पकड़ में नहीं आ सकता क्योंकि 'स्वयं' सूक्ष्मतम् है सूक्ष्मतम् होने से यह सभी के भीतर (अन्तर्यामी) है, बाहर भीतर इस तथा अन्य संसारों में वही (सर्वव्यापक) है। सभी शक्तियों का अधिष्ठान (सर्व शक्तिमान) है। प्रकृति का कोई भी गुण इसे छू नहीं सकता (निर्गुण), परन्तु सभी गुणों का साक्षी (सगुण) है। इसका कोई आकार न होने से 'निराकार' तथा आकारों का अधिष्ठान होने से 'साकार' भी है। कान इसको नहीं सुन सकते परन्तु इसी की सत्ता से सुनते हैं। त्वचा इसे छू नहीं सकती परन्तु इसी की सत्ता छूने की क्षमता रखती है। आँख इसे देख नहीं सकती परन्तु इसी की सत्ता से देखने का काम करती है। जिव्हा इसे चख नहीं सकती परन्तु इसी की सत्ता से चख सकने लायक है। नाक इसे सूंघ नहीं सकता परन्तु इसी की सत्ता से सूंघने का काम करती है। मन तथा बुद्धि भी उसे अपना विषय नहीं बना सकते प्रत्युत उसी की सत्ता से ही अपना कार्य करते हैं।

सामान्य सांसारिक विषय जिन इन्द्रियों द्वारा संस्पर्षित होते हैं, वे इन्द्रियाँ उस सूक्ष्मतम तत्व (स्वयं) का अनुभव कैसे करें जिसकी सत्ता मात्र से इनकी अनुभव शक्ति है? उस तत्व को ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा बुद्धि कैसे विषय बना सकती हैं? ज्ञान तो 'उसी' को हो सकता है। इसी सूक्ष्मता को गीता में 'अणोरणीयांसम्' (अणुओं का भी अणु) कहा गया है। इसी सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान गुरु ही करा सकते हैं।

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥ [5]

गुरुगीता 44

'गुरु' शब्द में (गु) अर्थात् अँधेरा, (रु) अर्थात् प्रकाश। जो अँधेरे में प्रकाश कर दे वह गुरु। शिक्षक तथा गुरु का वास्तविक अन्तर ऐसे विषय के माध्यम से और भी अधिक सुस्पष्ट हो जाता है जिसका रूप स्थूल से सूक्ष्मतम तक के क्षेत्र तक विस्तृत हो। ऐसा विषय है– 'संगीत'।

संगीत :

संगीत अनन्तकाल से गुरु शिष्य परंम्परा के माध्यम से ही हम तक पहुँचा है परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इसे औपचारिक शिक्षा हेतु कई विश्वविद्यालयों में एक अलग विषय के रूप में बी.ए., एम.ए., एम.फिल तथा पी.एच.डी. की उपाधियाँ अजित करने का माध्यम भी बनाया जा चुका। परमार्थ का व्यवहार में भी उपयोग हो, यह लक्षण शुभ है परन्तु शिक्षकों द्वारा संगीत की शिक्षा विद्यार्थी को उस प्रकार से तत्वबोध तक लेजा सके जिस प्रकार से गुरु हरिदास द्वारा प्रदत्त संगीत का ज्ञान, ऐसी आशा रखना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। संगीत तो ऐसी कड़ी है जिसका एक सिरा स्थूल संसार से जुड़ा है तो दूसरा सूक्ष्मतम स्वरूप बोध से। न केवल सभी प्रकार के वाद्य साकार रूप में हैं, वरन् मनुष्य का कण्ठ भी एक प्रकार का वाद्य होने से साकार है (अतः मानव शरीर को गात्र वीणा भी कहा जात्ता है)। परन्तु वह चिन्मय तत्व जो मानव कण्ठ के माध्यम से या मनुष्य द्वारा वाद्य तथा नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, वह तो निराकार ही है। यही कारण है कि ज्ञानेन्द्रियों-कर्मेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि (जो सब स्थूल-सूक्ष्म की परिधि में हैं) के माध्यम से हुई अभिव्यक्ति निराकार की है, सृक्ष्मतम की है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि का शिक्षण शिक्षक द्वारा संभव हो सकता है, अतः औपचारिक शिक्षण ठीक ही प्रतीत होता है, परन्तु आनन्द स्वरूप संगीत बोध कोई विरला गुरु ही करा सकता है। संगीत बोध शिक्षक-शिक्षार्थी द्वारा उतना नहीं कराया या किया जा सकता, जितना गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा हो सकता है। यहाँ तो गुरु सिद्ध तथा शिष्य साधक हों तभी लक्ष्य उपलब्ध हो सकता है। सारांश यह कि सांसारिक शिक्षायें शिक्षक के क्षेत्र में हैं तो पारमार्थिक बोध केवल सद्गुरु द्वारा ही सम्भव हो सकता है। सांगीतिक विद्या का वास्तविक ज्ञान गुरु द्वारा ही संभव है। आध्यात्मिक गुरु के द्वारा ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर स्वयं चलना तथा संगीतज्ञ गुरु का संगीत में राग को व्यवहार करने का ढंग सहज ही शिष्य के मन पर अमिट छाप छोड़ते हैं। शिष्य के लिए वह उदाहरण अनुकरणीय स्वतः ही सिद्ध होता है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरा जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

गीता 3/21

श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा आचरण करता है वैसा-वैसा ही अन्य लोग भी आचरण करने लगते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है समस्त जन उसी का अनुसरण करने लगते हैं।

साधारणतया यह दृष्टिगोचर होता है कि संगीतज्ञ के गृह में सांगीतिक वातावरण उनके पुत्रों-पुत्रियों एवं शिष्यों-शिष्याओं को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। अनुवांशिकी एवं वातावरण के मिश्रित प्रभाव से संगीत साधना रत शिष्यपुत्र शनैः शनैः सिद्धि प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

गीता 18/45

अपने अपने (स्वाभाविक) कर्मों में रत मानव परम सिद्धि को प्राप्त करता है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

गीता 18/46

अपने स्वाभाविक कार्यों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

गुरु की अनंत महिमा का व्याख्यान संभव नहीं। गुरु ही सांसारिक शिक्षा एवं संसार से परे मायातीत ज्ञान का संवाहक है। गुरु की कृपा से ही संगीत में स्वरों का उचित श्रुति पर गायन वादन बोध गम्य एवं संभव हो पाता है ताल, लय, रागों का विस्तार भली प्रकार जानने में गुरु का स्थान अन्यतम है। संगीत एवं अध्यात्म के क्षेत्र में अनवरत ज्ञान प्राप्ति में संलग्न रहने से जीव संस्कारित होता है। रागदारी संगीत में गुरु के बिना भैरव और तोड़ी के कोमल ऋषभ में अंतर, पूरिया-मारवा-सोहनी का भेद, भूपाली-देशकार की पहचान इत्यादि असंभव है। इसी तरह मल्हार के प्रकार कान्हड़ा के प्रकार, तोड़ी के प्रकार तथा बिलावल के प्रकारों में उनकी विशेषताओं का ध्यान रखते हुए उनके सूक्ष्म भेदों सहित अपने कंठ से निर्वहन करने में गुरु का मार्गदर्शन अनिवार्य है।

सद्गुरु तथा शिष्य के बीच सेतु (पुल) का होना भी अनिवार्य है। वह सेतु है : श्रद्धा

श्रद्धा :

शिष्य में यदि शिष्यत्व न हो अर्थात अपने अहंकार को किनारे रख ज्ञानार्जन की अभीप्सा न हो, तो स्वयं परमात्मा भी यदि गुरु रूप में आ जायें (वैसे तो सद्गुरु साक्षात परमात्मा की ही विभूति हैं) तो अपने को असमर्थ पायेंगे। कृपा-वर्षा में यदि शिष्य रूपी घड़ा उल्टा ही पड़ा रहे तो वह खाली ही रहेगा। गुरु वचनों पर श्रद्धा किये बिना, यदि शिष्य अपनी अधूरी जानकारियों के आधार पर गुरु से विवाद ग्रस्त रहेगा तो भी तत्व बोध से वंचित रह जायगा। शिष्य को जो कुछ भी ज्ञात है, वह तो संसार का ही अंग है।

गुरु उसे 'अज्ञात' में उतारना चाहता है परन्तु साधारण व्यक्ति को तो अज्ञात से भय होता है। वह तो ज्ञात में ही सुरक्षित महसूस करता है।

अज्ञात में उतरना उसे असुरक्षित लगता है। यहाँ श्रद्धा ही एकमात्र उपाय है। नवजात पक्षी को यह कल्पना ही नहीं होती कि घोंसले से बाहर अनन्त आकाश है, वह तो घोंसले में सुरक्षित महसूस करता है क्योंकि उसने अब तक केवल धोंसले को ही देखा-जाना है। माता-पक्षी या पिता पक्षी उसके सामने उड़-उड़ कर उसे चेताने का प्रयास ही कर सकते हैं परन्तु यदि छोटा पक्षी इन संकेतों पर श्रद्धा करके आकाश में न जाए, तो वह सुरक्षित भले रह जाए, किन्तु घोंसले में ही उसका अंत आ जाएगा उसकी अश्रद्धा के कारण उसकी उन्नति ना हो पाएगी। श्रद्धा हीनता के कारण ही अनंत आकाश में विचरने की संभावना घोंसले में सीमित होकर रह जाएगी। अतः श्रद्धा रूपी सेतु ही गुरु की अनंतता तक पहुँचाने में सक्षम है। इस सेतु के बिना शिष्य का शिष्यत्व वास्तविक नहीं हो पाता। श्रद्धा ही एक मात्र सेतु है जिसके द्वारा गुरु अपने शिष्य को ज्ञात (संसार) से अज्ञात (तत्व) की ओर ले जा कर उसे अज्ञेय (परम तत्व) की अनन्त यात्रा में लीन कर देता है। अज्ञेय में लीनता अज्ञेय से ही उसे अभिन्न कर डालती है। यह वही अज्ञेय तत्व है जहाँ से गुरु-शिष्य परम्परा आरम्भ हुई क्योंकि ''पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।'' योगदर्शन के अनुसार वह ईश्वर सबके पूर्वजों का भी गुरु है, क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है।

गीता में कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग की मार्गत्रयी बताई गई है। ईश्वर का साक्षात्कार करने हेतु इन मार्गों को अपनाया जाए-यही करणीय है। कर्म योग में निष्कामता पूर्वक कर्तव्य का अनुष्ठान, भक्तियोग में श्रद्धापूर्वक समर्पण तथा ज्ञानयोग में स्वयं को ईश्वर का अभिन्न अंश जान लेना ही मुख्य है। संगीत के क्षेत्र में भक्तियोग है– श्रद्धा। गुरु द्वारा दर्शाए मार्ग पर श्रद्धा, स्वयं की क्षमताओं पर श्रद्धा तथा स्वयं के परिश्रम पर श्रद्धा रखना शिष्य का कर्तव्य है। कर्मयोग में जिस प्रकार फल की इच्छा न रखते हुए केवल मात्र अपने कार्य को दक्षता पूर्वक करते रहने का आदेश है उसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में दृढ़ता से निरंतर अभ्यास ही सफलता की कुंजी है। गीता में भी अभ्यास और वैराग्य को साधने का निर्देश है। मन का नियंत्रण किसी भी साधना के लिए प्रथम आवश्यकता है।

यतो यतो निश्चरति मनश्चन्चलमस्थिरम।
ततस्ततो नियम्येतदात्मन्येव वशं नएत्॥

गीता 6/26

यह अस्थिर एवं चंचल मन जहाँ-जहाँ भी (सांसारिक विषयों में) विचरण करता है वहाँ-वहाँ से उसे हटाकर इसका नियमन कर उसे अपने वश में ले आ।

अध्यात्म मार्ग एवं संगीत साधना दोनों पर चलने में मन ही बाधक है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥2॥ [6]

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्

अध्यात्म मार्ग का अनुयायी ज्ञानी, भक्ति-पूर्वक निष्काम कर्म करके परमात्मा की प्राप्ति करता है तथा संगीत साधक अकिंचन होकर केवल स्वर साधना में ही आनंद मग्न, स्वर साम्राज्य में विचरण करता हुआ कब स्वर-सिद्ध हो जाता है उसे भान भी नहीं होता क्योंकि तब उसका संपूर्ण अस्तित्व स्वरमय में हो जाता है अर्थात् वह मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार को विलीन कर 'स्वयं' का अस्तित्व 'स्वर' के अस्तित्व से अभिन्न कर लेता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Brihadaranyaka Upanisad. With the commentary of Madhvacharya called also Anandtirtha. Translated by Rai Bahadur Sriśa Chandra Vasu with the assistance of Ramaksyaya Bhattadharys, rev Allahabad Panini Office 1933 अध्याय-1, ब्राह्मण-3, मंत्र-28
2. Brihadaranyaka Upanishad - Shankara Bhashya translated by Swami Madhavananda, with an introduction by Mahamahopadhyaya Prof. S. Kuppuswami Sastri 987 pages, 1950
3. Biswal B N (2014) Noble Ideas of Swami Vivekananda on Education and in globle Intentions of Lord Macaulay: a Critical Review on School Education in India. Issues and Ideas in Education 2. 149–157
4. Srimadbhagavat Gita. Vedvyas. Book code 1658 Gita Press Gorakhpur pp 224.
5. Swami Narayananand, Sri Guru Gita Divine life Society
6. ब्रह्मबिन्दूपनिषद् https://upanishads.org.in otherupanishads/ 21 Accessed on 30 Aug 2021 19:00